नईदुनिया

संपादकीय

मदरसे और वंदे मातरम् : अदालत की दो टूक, संविधान सर्वोपरि

देश में समय-समय पर ऐसे मुद्दे उठते हैं, जो आस्था, पहचान और राष्ट्रभक्ति के नाम पर बहस का कारण बन जाते हैं। हाल ही में मदरसों में वंदेमातरम गाए जाने को लेकर उठा विवाद और उस पर अदालत की टिप्पणी ने फिर यह सवाल खड़ा किया है कि राष्ट्रीय प्रतीकों के सम्मान और धार्मिक स्वतंत्रता के बीच संतुलन कैसे बनाया जाए। कलकत्ता हाईकोर्ट ने इस मामले की सुनवाई के दौरान स्पष्ट किया कि यदि पूरा वंदेमातरम गाने से किसी की धार्मिक भावना आहत होती है तो उसकी जगह राष्ट्रगीत के सम्मान में खड़े होकर राष्ट्र के प्रति निष्ठा व्यक्त की जा सकती है। इस बात में कानून, संविधान और सामाजिक समरसता तीनों को साधने का प्रयास दिखाई देता है। विवाद की जड़ में पश्चिम बंगाल सरकार का वह आदेश था, जिसमें सभी सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों, मदरसों और अन्य शिक्षण संस्थानों में साप्ताहिक तौर पर वंदेमातरम गाने का निर्देश दिया गया था। इस आदेश को कुछ लोगों ने जनहित याचिका के माध्यम से अदालत में चुनौती दी। याचिकाकर्ताओं का कहना था कि वंदेमातरम के कुछ शब्दों और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण मदरसों में पढ़ने वाले छात्रों के अभिभावक इसे धार्मिक आधार पर स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। उनका तर्क था कि किसी एक गीत या प्रतीक को थोपा नहीं जा सकता। वहीं सरकार और कुछ संगठनों का मत था कि वंदेमातरम राष्ट्र की एकता और गौरव का प्रतीक है।

अदालत ने स्पष्ट किया कि राष्ट्रगीत का सम्मान करना हर नागरिक का कर्तव्य है, लेकिन सम्मान का तरीका एक जैसा होना जरूरी नहीं है। यदि किसी समुदाय को गीत के बोल से आपत्ति है तो वह खड़े होकर मौन रहकर या अन्य सम्मानजनक तरीके से राष्ट्र के प्रति अपनी निष्ठा दिखा सकता है। जबरदस्ती किसी से कुछ करवाना न तो संविधान की भावना है और न लोकतंत्र की पहचान। भारत विविधताओं का देश है। यहां अलग धर्म, भाषा और संस्कृति के लोग रहते हैं, इसलिए कानून और प्रशासनिक व्यवस्था में इस विविधता का सम्मान होना चाहिए। यह टिप्पणी इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रभक्ति और धार्मिक आस्था को एक-दूसरे के विरोध में खड़ा करने के बजाय दोनों के बीच संतुलन का रास्ता दिखाती है। वंदेमातरम बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित वह गीत है, जिसे स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं ने सम्मान दिया। संविधान सभा ने इसे राष्ट्रगीत का दर्जा दिया, जबकि जन गण मन को राष्ट्रगान बनाया गया। दोनों का अपना महत्व है। ऐसे में किसी भी विवाद का समाधान टकराव के बजाय संवाद से होना चाहिए। मदरसे भी भारत की शिक्षा व्यवस्था का हिस्सा हैं। यदि सरकार चाहती है कि मदरसों के छात्र राष्ट्रीय मुख्यधारा से जुड़ें तो उन्हें साथ लेकर चलना होगा। उन्हें यह एहसास कराना होगा कि देश सबका है और देश के प्रतीक भी सबके हैं। डर या दबाव से यह भावना पैदा नहीं होगी, प्रेम और सम्मान से होगी। लोकतंत्र में बीच का रास्ता ही सबसे टिकाऊ रास्ता होता है। संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है और मूल कर्तव्यों में राष्ट्रगान तथा राष्ट्रीय प्रतीकों के सम्मान की भावना भी निहित है। दोनों बातों को साथ लेकर चलना ही भारतीय लोकतंत्र की ताकत है। कलकत्ता हाईकोर्ट की टिप्पणी किसी की जीत या हार नहीं, बल्कि संविधान की जीत का संदेश है। वंदेमातरम का उद्देश्य लोगों को जोड़ना है। इसलिए इस मुद्दे को विवाद का कारण बनाने के बजाय ऐसी शुरुआत होनी चाहिए, जिसमें हर बच्चा गर्व से कह सके कि यह देश मेरा है और मैं इस देश का हूं।

आजकल

'क्या बोलती पब्लिक' से जनता की नब्ज टटोलने की कोशिश

राजनीति में संवाद की सबसे बड़ी ताकत होती है। जब कोई दल जनता के बीच जाकर सीधे उसकी बात सुनता है तो उसे जमीन की हकीकत समझ में आती है। इसी सोच के साथ अब काकरोच जनता पार्टी ने देशभर में 'क्या बोलती पब्लिक' नामक अभियान की शुरुआत की है। इसका उद्देश्य देश और हर प्रदेश की नब्ज टटोलना, लोगों की समस्याएं, अपेक्षाएं और सुझाव सीधे सुनकर उन्हें नीतियों में शामिल करना है। चुनावों से पहले इस तरह का जनसंपर्क अभियान कोई नई बात नहीं है, लेकिन इस बार इसका तरीका और समय महत्वपूर्ण हैं। सीजेपी का यह अभियान रैलियों और भाषणों तक सीमित नहीं है। पार्टी के कार्यकर्ता और नेता गांव से लेकर शहर तक जाएंगे, चौपाल लगाएंगे, नुक्कड़ सभाएं करेंगे और लोगों से पूछेंगे कि वे क्या सोचते हैं। महंगाई, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य और विकास जैसे मुद्दों पर आम आदमी की राय जानना इसका प्रमुख उद्देश्य है। अक्सर आरोप लगता रहा है कि नीतियां दिल्ली में बैठकर बनती हैं और जमीन पर उनका असर अलग होता है। क्या बोलती पब्लिक इसी खाई को पाटने की कोशिश है।

इस अभियान से पार्टी को जमीनी फीडबैक मिल सकता है। सर्वे और आंकड़ों के आधार पर चुनावी रणनीति बनती है, लेकिन आम आदमी की जुबानी बात का असर अलग होता है। किसान फसल के दाम और युवा रोजगार को लेकर सवाल करेगा तो उसका संदेश सीधे नेतृत्व तक पहुंचेगा। इससे पार्टी को अपनी कमजोरियों और ताकत का पता चल सकता है और उसी आधार पर घोषणा पत्र तथा प्रचार की दिशा तय हो सकती है। अभियान की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि सुनने के बाद कितनी बातों पर अमल होता है। यदि यह केवल फोटो और वीडियो तक सीमित रह गया तो जनता का भरोसा टूटेगा। जरूरी है कि अभियान के बाद रिपोर्ट कार्ड सामने आए कि कितने सुझाव माने गए और कितनी समस्याएं हल हुईं। लोकतंत्र की असली ताकत जनता की आवाज है। जो दल उसे सुनने और उस पर काम करने का साहस करेगा, वही जनता का विश्वास जीत सकेगा।

एच-1बी वीजा नियमों में बदलाव से भारतीय पेशेवरों की चिंता बढ़ी

अमेरिका में काम करने वाले लाखों विदेशी पेशेवरों के लिए बड़ा झटका सामने आया है। अमेरिकी सरकार एच-1बी वीजा से जुड़े नियमों में महत्वपूर्ण बदलाव की तैयारी में है। प्रस्तावित नियम के तहत यदि कोई एच-1बी वीजा धारक अपनी नौकरी छोड़ता है या उसकी नौकरी चली जाती है तो उसे अमेरिका में रहने के लिए केवल 60 दिन का समय मिलेगा। पहले इस अवधि में वह नई नौकरी तलाश सकता था, वीजा स्टेटस बदल सकता था या देश छोड़ने की तैयारी कर सकता था। नए नियम में इस ग्रेस पीरियड को खत्म करने का प्रस्ताव है। यानी नौकरी जाते ही वीजा की वैधता भी समाप्त मानी जाएगी और व्यक्ति को अमेरिका छोड़ना पड़ सकता है।

यह प्रस्ताव अमेरिकी सरकार के बजट प्रबंधन और बजट कार्यालय (ओएमबी) की समीक्षा में है। इसके बाद इसे फेडरल रजिस्टर में प्रकाशित किया जाएगा और जनता से राय मांगी जाएगी। राय और आपत्तियां दर्ज कराने के लिए 30 से 60 दिन का समय दिया जा सकता है। इसके बाद सरकार अंतिम फैसला लेगी। अभी यह केवल प्रस्ताव है, लेकिन इससे अमेरिका में रह रहे भारतीय पेशेवरों में बेचैनी बढ़ गई है।

एच-1बी वीजा उच्च कुशल विदेशी कर्मचारियों को विशेष नौकरियों के लिए दिया जाता है। हर साल दुनिया भर से हजारों लोग इस वीजा के जरिए अमेरिका जाते हैं और उनमें सबसे बड़ी संख्या भारतीयों की है।

अब तक नियम यह था कि यदि किसी एच-1बी धारक की नौकरी छूट जाती है तो उसे 60 दिन का ग्रेस पीरियड मिलता था। इस दौरान वह नई नौकरी ढूंढ सकता था, नई कंपनी से वीजा ट्रांसफर करवा सकता था या अपने वीजा को दूसरी श्रेणी में बदल सकता था, जैसे एच-4, एफ-1 या एल-1। इस मोहलत से राहत मिलती थी, क्योंकि नई नौकरी और वीजा की प्रक्रिया पूरी करने में समय लगता है। प्रस्तावित बदलाव के बाद यह सुरक्षा कवच हट जाएगा। इस प्रस्ताव का सबसे ज्यादा असर भारतीय पेशेवरों पर पड़ सकता है, क्योंकि एच-1बी वीजा लेने वालों में 70 प्रतिशत से ज्यादा भारतीय हैं। अगर किसी कंपनी में छंटनी होती है या प्रोजेक्ट बंद होता है तो हजारों लोग एक साथ वीजा संकट में फंस सकते हैं। उन्हें न तो नई नौकरी मिल पाएगी और न ही देश छोड़ने के लिए पर्याप्त समय मिलेगा।

आर्थिक पहलू भी महत्वपूर्ण है। अमेरिका की टेक इंडस्ट्री विदेशी टैलेंट पर निर्भर है। गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, अमेजन और फेसबुक जैसी कंपनियों में बड़ी संख्या में भारतीय इंजीनियर काम करते हैं। यदि नियम सख्त होते हैं तो कंपनियों को टैलेंट की कमी का सामना करना पड़ सकता है और भारतीय पेशेवरों का भरोसा भी टूट सकता है। कई लोग अमेरिका जाने से पहले दो बार सोचेंगे और कनाडा, ऑस्ट्रेलिया या यूरोप जैसे देशों का रुख कर सकते हैं।

सामाजिक पहलू भी गंभीर है। एच-1बी पर गए अधिकांश लोग परिवार के साथ जाते हैं। उनकी पत्नी एच-4 वीजा पर होती हैं और बच्चे स्कूल में पढ़ते हैं। अचानक नौकरी जाने और पर्याप्त समय न मिलने पर पूरे परिवार को बीच सत्र में अमेरिका छोड़ना पड़ सकता है। यह मानसिक तनाव बहुत बड़ा है।

राजनीतिक दृष्टि से यह प्रस्ताव अमेरिका में स्थानीय नौकरियां बचाने की मांग के बीच आया है। अमेरिकी सरकार का तर्क है कि पहले अमेरिकी नागरिकों को नौकरी मिलनी चाहिए और विदेशी कर्मचारियों पर निर्भरता कम होनी चाहिए। लेकिन आलोचकों का कहना है कि एच-1बी वीजा धारक ऐसी कुशल नौकरियां करते हैं, जिनमें अमेरिकी श्रमिकों की उपलब्धता कम है। इसलिए नियमों को सख्त करना अमेरिका के अपने हित में नहीं है।

भारत सरकार की भी इस पर नजर है। विदेश मंत्रालय और अमेरिकी दूतावास के बीच इस मुद्दे पर बातचीत हो सकती है, क्योंकि इससे भारतीय परिवार प्रभावित होंगे। भारत के आईटी उद्योग संघ भी इस प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि इससे द्विपक्षीय संबंधों पर असर पड़ेगा और भारत से अमेरिका जाने वाले टैलेंट की धारा रुक सकती है। यह प्रस्ताव अंतिम नहीं है। इसे कानून बनने से पहले कई चरणों से गुजरना होगा। जनता की राय ली जाएगी, कांग्रेस में चर्चा होगी और फिर राष्ट्रपति की मंजूरी की जरूरत होगी। लेकिन खबर सामने आने के बाद लोगों में अनिश्चितता है।

यदि यह नियम लागू भी होता है तो असर धीरे-धीरे दिखेगा। कंपनियां भी एच-1बी पर हायरिंग से पहले कई बार सोचेंगी और आउटसोर्सिंग या रिमोट वर्क की तरफ जा सकती हैं।

इस पूरे घटनाक्रम से साफ है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में इमिग्रेशन नीति का बड़ा रोल है। एक छोटा-सा नियम बदलाव लाखों जिंदगियों को हिला सकता है। भारत के लिए जरूरी है कि वह अपने पेशेवरों के लिए दूसरे देशों में भी अवसर तलाशे और साथ ही देश में रोजगार तथा नवाचार का माहौल मजबूत करे, ताकि लोग मजबूरी में विदेश न जाएं।

यह बदलाव केवल वीजा धारकों का सवाल नहीं है, बल्कि अमेरिका की प्रतिभा नीति और भारत के कुशल मानव संसाधन के भविष्य से भी जुड़ा महत्वपूर्ण विषय है।

एच-1बी वीजा नियमों में प्रस्तावित बदलाव भारतीय पेशेवरों के लिए आज बड़ी और गंभीर चुनौती है। अभी समय है कि लोग सतर्क रहें, अपने विकल्प खुले रखें और कानूनी सलाह लें। साथ ही भारत और अमेरिका को मिलकर ऐसा रास्ता निकालना चाहिए, जिससे टैलेंट का सम्मान हो और स्थानीय नागरिकों के हित भी सुरक्षित रहें, क्योंकि अंततः दोनों देशों की प्रगति एक-दूसरे पर निर्भर है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

शहर से दूर गांव में सुकून की तलाश

इस नए पर्यटन मॉडल को ग्रामीण पर्यटन या होमस्टे पर्यटन कहा जा रहा है। इसमें शहर से आने वाले मेहमान गांव के किसी घर में रुकते हैं, वहां का खाना खाते हैं, खेतों में घूमते हैं, लोकगीत सुनते हैं और गांव वालों के साथ समय बिताते हैं। यह न लग्जरी टूर है और न पिकनिक। यह एक ऐसा अनुभव है, जो इंसान को उसकी जड़ों से जोड़ता है। कोरोना के बाद जब लोग महीनों घरों में बंद रहे तो उन्हें प्रकृति और अपनों के साथ बिताए समय का महत्व समझ आया। इसी दौर के बाद ग्रामीण पर्यटन को गति मिली। सरकार भी इसे बढ़ावा दे रही है, क्योंकि इससे शहर के लोगों को राहत और गांव के लोगों को रोजगार मिलता है।

भागदौड़ भरी जिंदगी और कंक्रीट के जंगलों से ऊब चुके शहरी लोग अब सुकून की तलाश में शहरों से दूर गांवों का रुख कर रहे हैं, जहां न ट्रैफिक का शोर है, न प्रदूषण की धुंध और न समय की कोई दौड़। यहां खुला आसमान है, हरी फसलें हैं, मिट्टी की खुशबू है और अपनापन है। पिछले कुछ सालों में वीकेंड टूरिज्म का यह नया ट्रेंड तेजी से बढ़ा है। लोग अब महंगे होटलों और भीड़ भरे हिल स्टेशनों की जगह गांवों में दो दिन बिताना पसंद कर रहे हैं। उन्हें लगता है कि असली भारत गांवों में बसता है और उसे करीब से देखने-समझने का मौका पर्यटन के जरिए मिल सकता है। मध्यप्रदेश में भी यह बदलाव साफ दिख रहा है। भोपाल, इंदौर, जबलपुर और ग्वालियर जैसे शहरों से लोग वीकेंड पर बुंदेलखंड, बघेलखंड और निमाड़ के गांवों की ओर निकल पड़ते हैं। उन्हें स्थानीय संस्कृति, खानपान और जीवनशैली का अनुभव चाहिए, जो शहरों में आसानी से नहीं मिलता।

इस नए पर्यटन मॉडल को ग्रामीण पर्यटन या होमस्टे पर्यटन कहा जा रहा है। इसमें शहर से आने वाले मेहमान गांव के किसी घर में रुकते हैं, वहां का खाना खाते हैं, खेतों में घूमते हैं, लोकगीत सुनते हैं और गांव वालों के साथ समय बिताते हैं। यह न लग्जरी टूर है और न पिकनिक। यह एक ऐसा अनुभव है, जो इंसान को उसकी जड़ों से जोड़ता है। कोरोना के बाद जब लोग महीनों घरों में बंद रहे तो उन्हें प्रकृति और अपनों के साथ बिताए समय का महत्व समझ आया। इसी दौर के बाद ग्रामीण पर्यटन को गति मिली। सरकार भी इसे बढ़ावा दे रही है, क्योंकि इससे शहर के लोगों को राहत और गांव के लोगों को रोजगार मिलता है। भोपाल से करीब दो घंटे की दूरी पर स्थित गांवों में होमस्टे शुरू हो गए हैं। यहां सीमित खर्च में रहने, खाने और घूमने की व्यवस्था मिल जाती है। मिट्टी के घर में सोने का अनुभव, चूल्हे पर बनी रोटी और दाल का स्वाद, खेतों के बीच सुबह की सैर और रात में तारों के नीचे बैठकर बातें करना, यह सब शहर का कोई होटल नहीं दे सकता। भोपाल के पास सांची, रायसेन और बेतवा के किनारे बसे गांव वीकेंड डेस्टिनेशन बन रहे हैं। जबलपुर से लोग बरगी और कान्हा के आसपास के गांवों में जाते हैं, जबकि इंदौर से महू के आसपास के आदिवासी गांवों में पर्यटकों की आवाजाही बढ़ी है।

इस ट्रेंड का सबसे बड़ा फायदा गांव की महिलाओं और युवाओं को हुआ है। पहले जिन महिलाओं के पास आय का साधन नहीं था, वे अब होमस्टे चलाकर आत्मनिर्भर बन रही हैं। मालवा के खारी गांव की महिलाएं बांस की टोकरियां बनाकर बेचती थीं। अब वे पर्यटकों को टोकरियां दिखाती हैं, उन्हें बुनना सिखाती हैं और लोकगीत भी सुनाती हैं। बुंदेलखंड के राधापुर, बागन और लाड़पुरा जैसे गांवों में महिलाएं समूह बनाकर मड़वे की रोटी, साग और बेसन के लड्डू बनाकर परोसती हैं। इससे गांव की पहचान और आमदनी दोनों बढ़ती हैं। युवाओं को गाइड और संचालक के रूप में काम मिल रहा है। वे मेहमानों को जंगल, नदी और ऐतिहासिक जगहें दिखाते हैं और सम्मान के साथ आय अर्जित करते हैं।

शहरी लोग भी इस अनुभव को पसंद कर रहे हैं। कई लोगों का कहना है कि ऑफिस और स्क्रीन से थकने के बाद गांव की शांति मानसिक राहत देती है। कुछ माता-पिता बच्चों को गांव इसलिए ले जाते हैं ताकि वे समझ सकें कि दूध गाय से और सब्जी खेत से आती है। एक आईटी प्रोफेशनल ने बताया कि होमस्टे में रहकर उसने सीखा कि कम संसाधनों में भी खुश रहा जा सकता है। गांव वालों की दिनचर्या और आपसी मेलजोल शहर के लोगों के लिए सीख का विषय बन रहा है।

इस पर्यटन का असर स्थानीय अर्थव्यवस्था पर भी पड़ रहा है। पहले गांव के लोग अपनी उपज सस्ते में बेचकर शहर आते थे, अब शहर के लोग खुद गांव पहुंचकर जैविक सब्जी, दूध, घी और हस्तशिल्प खरीद रहे हैं। बांस के सामान, मिट्टी के बर्तन और हाथ से बने कपड़े सीधे पर्यटकों को बेचे जा रहे हैं। इससे बिचौलियों की भूमिका घटती है और मुनाफा उत्पादक तक पहुंचता है। कुछ गांवों में युवाओं ने साइकिल टूर और नदी में बोटिंग जैसी गतिविधियां भी शुरू की हैं। इससे रोजगार के नए अवसर बन रहे हैं। सरकार और स्वयंसेवी संगठन भी ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा दे रहे हैं। कई गांवों में साफ पानी, शौचालय और सड़क जैसी बुनियादी सुविधाएं विकसित की जा रही हैं। महिलाओं को मेहमानों से व्यवहार, भोजन और सुरक्षा से जुड़े प्रशिक्षण दिए जा रहे हैं। बैंक छोटे ऋण उपलब्ध करा रहे हैं, ताकि लोग अपने घरों को होमस्टे में बदल सकें। पंचायतें भी पर्यटन को आय का साधन मानकर गांव की सफाई और सौंदर्यीकरण पर ध्यान दे रही हैं।

हालांकि चुनौतियां भी हैं। कई गांवों तक अच्छी सड़क नहीं है, इंटरनेट की सुविधा सीमित है और कुछ जगह पानी की समस्या है। दूसरी चुनौती प्रशिक्षण की है। शहरी मेहमान और गांव वाले एक-दूसरे की आदतों को हमेशा आसानी से नहीं समझ पाते। गर्मी और बरसात में पर्यटकों की संख्या भी कम हो जाती है। इसलिए ग्रामीण पर्यटन को केवल मौसमी गतिविधि न बनाकर पूरे साल की योजना के रूप में विकसित करना होगा।

यह सिर्फ पर्यटन नहीं, दो भारतों को जोड़ने का पुल भी है। एक भारत तेज रफ्तार वाला है और दूसरा धीमी गति से जीता है। जब दोनों मिलते हैं तो समझ और आपसी सम्मान बढ़ता है। शहर का व्यक्ति गांव की मेहनत देखता है और गांव का व्यक्ति शहर की सोच समझता है। प्रकृति के करीब आने से पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी भी बढ़ती है। युवा अब गांव में रहकर जैविक खेती, हस्तशिल्प, फोटोग्राफी और डिजिटल कारोबार जैसे नए काम कर रहे हैं। सरकार इसे कौशल विकास और आत्मनिर्भरता से जोड़े तो ग्रामीण पर्यटन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मजबूत आधार बन सकता है। शहरों से गांवों की ओर हो रहा यह रुझान एक तरह का उल्टा पलायन है। पहले लोग रोजगार के लिए गांव से शहर जाते थे, अब सुकून के लिए शहर से गांव आ रहे हैं। यह बदलाव बताता है कि विकास का अर्थ केवल ऊंची इमारतें नहीं, खुशहाल जीवन भी है। मिट्टी की सौंधी खुशबू, चूल्हे की रोटी, खेतों की हरियाली और लोगों का अपनापन हमारी असली धरोहर हैं। वीकेंड टूरिज्म इन्हें सहेजने का माध्यम बन सकता है, जहां शहर का आदमी सुकून पाता है और गांव का आदमी सम्मान और रोजगार। अगली बार वीकेंड आए तो किसी हिल स्टेशन की बजाय किसी गांव का रुख कीजिए। वहां के लोगों से बात कीजिए, उनका खाना खाइए और उनकी कहानी सुनिए। संभव है कि लौटते समय आपके साथ सिर्फ तस्वीरें नहीं, बल्कि जीवन को देखने का एक नया नजरिया भी हो।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

आक्रामक कार्रवाई नहीं, जरूरी है संतुलित निगरानी

खाद्य पदार्थों की शुद्धता और स्वच्छता का सवाल सीधे लोगों के स्वास्थ्य से जुड़ा है। इसलिए होटल, रेस्टोरेंट, डेयरी, मिठाई की दुकानों और खाद्य पदार्थ बेचने वाले प्रतिष्ठानों की जांच जरूरी है। महाराष्ट्र में अन्न एवं औषधि प्रशासन की ओर से जिस तेजी से कार्रवाई की गई है, उसने इस महत्वपूर्ण विषय को चर्चा के केंद्र में ला दिया है। विभाग की सक्रियता इसलिए स्वागत योग्य है कि खाद्य सुरक्षा से जुड़े नियमों के उल्लंघन की शिकायतें सामने आती रही हैं। लेकिन सवाल यह भी है कि कार्रवाई कितनी सख्त हो और उसका तरीका कैसा हो। नियमों का पालन कराना जरूरी है, मगर प्रशासनिक शक्ति का इस्तेमाल संतुलन के साथ होना चाहिए।

अन्न एवं औषधि प्रशासन की जिम्मेदारी केवल मिलावट पकड़ना नहीं है। उसे यह भी देखना होता है कि खाद्य सामग्री किस तरह तैयार हो रही है, उसे कैसे रखा जा रहा है, पानी साफ है या नहीं, रसोई में स्वच्छता है या नहीं और ग्राहकों को सुरक्षित भोजन मिल रहा है या नहीं। इन मानकों की जांच हो तो कई समस्याएं शुरुआत में ही रोकी जा सकती हैं। समस्या तब पैदा होती है जब कार्रवाई केवल किसी शिकायत या विशेष अभियान के बाद दिखाई देती है और कुछ समय बाद व्यवस्था फिर पुराने ढर्रे पर लौट आती है।

महाराष्ट्र में विभाग की कमान तुकाराम मुंढे के हाथों में आने के बाद कार्रवाई में तेजी दिखाई दी है। जांच, खाद्य नमूने लेने, प्रतिष्ठानों पर कार्रवाई, सील करने और जुर्माना लगाने जैसी गतिविधियां बढ़ी हैं। इससे यह संदेश गया है कि खाद्य सुरक्षा के नियमों को अब हल्के में नहीं लिया जाएगा। लेकिन किसी भी अभियान की सफलता का पैमाना केवल कितने छापे पड़े या कितने प्रतिष्ठान सील हुए, यह नहीं होना चाहिए। असली सफलता तब होगी, जब कारोबारियों को नियमों का पालन करने की आदत बने।

अदालत ने भी कुछ मामलों में कार्रवाई के तरीके पर सवाल उठाए हैं। 'दाग मिटाने के लिए तलवार का इस्तेमाल' जैसी टिप्पणी प्रशासन को यह याद दिलाती है कि कानून लागू करते समय प्रक्रिया और अनुपात का ध्यान रखना जरूरी है। नियमों का उल्लंघन करने वालों पर कार्रवाई होनी चाहिए, लेकिन हर गलती को गंभीर अपराध मानकर कठोर कदम उठाना उचित नहीं। किसी छोटे नियम के उल्लंघन और जानबूझकर मिलावट करने के बीच अंतर होना चाहिए। कार्रवाई दोष के अनुरूप होनी चाहिए और संबंधित कारोबारी को अपना पक्ष रखने का अवसर भी मिलना चाहिए। इस पूरे मामले का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि निगरानी केवल बड़े होटलों और नामी रेस्टोरेंट तक सीमित न रहे। शहरों में सड़क किनारे हजारों खाद्य विक्रेता हैं। वड़ा पाव, मिसल, भजिया, पानीपुरी, चाट, जूस, मिठाई और अन्य खाद्य पदार्थ खुले में बिकते हैं। कई जगह स्वच्छ पानी, कचरा प्रबंधन, खाद्य पदार्थ ढककर रखने और साफ बर्तनों की व्यवस्था नहीं होती। धूल, धुएं और मक्खियों के बीच तैयार होने वाला भोजन भी लोगों के स्वास्थ्य के लिए खतरा बन सकता है। इसलिए छोटे विक्रेताओं के लिए भी न्यूनतम खाद्य सुरक्षा मानक तय कर उनका पालन सुनिश्चित करना जरूरी है।

साथ ही छोटे कारोबारियों को केवल दंडित करने के बजाय प्रशिक्षित करना भी जरूरी है। उन्हें साफ पानी के उपयोग, खाद्य पदार्थों के सुरक्षित भंडारण, तेल के उचित इस्तेमाल, कच्चे और पके भोजन को अलग रखने तथा रसोई की सफाई के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए। इससे प्रशासन और कारोबारियों के बीच टकराव कम होगा और खाद्य सुरक्षा का उद्देश्य बेहतर ढंग से पूरा होगा।

उपभोक्ताओं की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्हें पता होना चाहिए कि संदिग्ध भोजन या खराब गुणवत्ता की शिकायत कहां और कैसे की जाए। प्रशासन को शिकायत की आसान और पारदर्शी व्यवस्था बनानी चाहिए। जांच, नमूनों और कार्रवाई की जानकारी सार्वजनिक की जानी चाहिए। इससे विभाग की जवाबदेही भी तय होगी और लोगों का भरोसा भी बढ़ेगा।

मध्यप्रदेश के लिए महाराष्ट्र का अनुभव महत्वपूर्ण सीख हो सकता है। यहां भोपाल, इंदौर, जबलपुर और ग्वालियर से लेकर छोटे कस्बों तक खाद्य प्रतिष्ठानों की जांच जरूरी है। त्योहारों के मौसम में मिठाई, दूध, तेल, मसाले और अन्य खाद्य पदार्थों की जांच तेज की जानी चाहिए। स्कूलों, अस्पतालों, छात्रावासों और सार्वजनिक संस्थानों में मिलने वाले भोजन की गुणवत्ता पर भी विशेष नजर होनी चाहिए।

खाद्य सुरक्षा का अभियान किसी एक अधिकारी या कुछ दिनों की कार्रवाई तक सीमित नहीं रहना चाहिए। प्रशासन को सख्ती के साथ निरंतरता, पारदर्शिता भी दिखानी होगी और कार्रवाई में समानता भी जरूरी है। बड़े कारोबारी हों या छोटे विक्रेता, नियम सभी के लिए समान होने चाहिए। कार्रवाई का उद्देश्य डर पैदा करना नहीं, सुरक्षित भोजन की संस्कृति बनाना होना चाहिए। नागरिक की थाली में पहुंचने वाला भोजन सुरक्षित है, यही इस पूरी व्यवस्था की सबसे बड़ी कसौटी है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)